ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 127-131

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

अनुसूचित जाति के बालिकाओं के विकास में सर्वशिक्षा अभियान की भूमिका (पटना जिला के विशेष संदर्भ में)

1. डॉ0 कपिलमुनि सिंह
2. पुतुल कुमारी

1. समाजशास्त्र विभाग– बी०डी० कॉलेज, पटना, 2. शोध अध्येत्री– समाजशास्त्र विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना (बिहार), भारत

Received-28.04.2023, Revised-04.05.2023, Accepted-09.05.2023 **E-mail: akbar786ali888@gmail.com**

सारांश: ***भारतीय समाज के राजनैतिक इतिहास का यदि सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि विभिन्न देश–काल में व्यक्तिगत एवं सामाजिक गतिशीलता के संसाधन के रूप में शिक्षा की महत्ता बनी रही। शिक्षा चाहे आध्यात्मिक रही हो या दार्शनिक, वैज्ञानिक रही हो या व्यावसायिक उसका महत्त्व सदैव रहाय गुरुकुल एवं मदरसे के रूप में शैक्षणिक संस्थाएं प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय समाज में भी रहों तथा मिशनरी, निजी एवं सार्वजनिक संस्थाओं के रूप में ये संस्थाएं औपनिवेशिक एवं उत्तर–औपनिवेशिक भारत में भी रही हैं। इन शैक्षणिक संस्थाओं की उपलब्धता किन सामाजिक वर्गों के लिए थी? इनकी व्यापक सामाजिक वैधता क्या थी? तथा इन संस्थाओं के मूल उद्देश्य में 'जनहित' के लिए कितना स्थान था? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका समाजशास्त्रीय विश्लेषण आवश्यक है।***

कुंजीभूत शब्द– राजनैतिक इतिहास, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, गतिशीलता, संसाधन, आध्यात्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक।

भारतीय इतिहास के विभिन्न कालानुक्रमों में शिक्षा का उद्देश्य अलग–अलग रहा है। प्राक्–आधुनिक काल में आध्यात्मिक एवं दार्शनिक आयामों से जुड़ी शिक्षा का ध्येय सामाजिक संरचनाओं की संस्तरण व्यवस्थाओं–जाति, लैंगिकता, धर्म, प्रजाति की वैधता को बनाए रखना तथा उसके अनुसार अधिकार एवं उत्तरदायित्व के मामलों पर निर्णय करना था। औपनिवेशिक भारत में शिक्षा के आधुनिकीकरण का उद्देश्य एक ऐसे सामाजिक वर्ग का विकास करना था जो साम्राज्यवादी सत्ता का प्रवक्ता एवं द्विभाषीय हो तॉकि सत्ता की हितोपूर्ति का अबाधचक्र चलता रहे। औपनिवेशिक शिक्षा एवं शैक्षणिक व्यवस्था की राष्ट्रवादी अभिव्यक्ति (राजाराम मोहन राय, सैयद अहमद खान, दयानंद सरस्वती, विवेकानंद, गांधी, अंबेडकर, आदि) सर्वथा अनअपेक्षित एवं अकल्पित साम्राज्यवादी व्युत्पन्न थी।

हालांकि, साम्राज्यवादी शासन की मंशा एवं पाश्चात्य शिक्षा के उदारवादी, प्रजातांत्रिक एवं वैज्ञानिक चरित्र की साझी समझ के साथ ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले, अंबेडकर, गोखले एवं गाँधी सरीखे स्वतंत्रता सेनानियों ने शिक्षा के विविध प्रारूपों की वकालत की। जहाँ ईश्वरचंद्र विद्यासागर एवं ज्योतिबा फुले ने समाज में लड़कियों की शिक्षा पर बल दिया, वहीं अंबेडकर ने शिक्षा को सामाजिक असमानता को दूर करने के एक अभिकरण के में देखा। एक ओर सैयद अहमद खान एवं दयानंद सरस्वती ने पूर्वी एवं पाश्चात्य शिक्षा व्यवस्थाओं के संगम एवं परस्पर संवाद की बात की (एंग्लो मुहम्डुन ओरियंटल कॉलेज, दयानंद एंग्लो–वैदिक कॉलेज) वहीं गांधी ने बुनियादी शिक्षा पर बल दिया।

शिक्षा की महत्ता को देखने का नजरिया चाहे आदर्शवादी हो या प्र.तिवादी, चाहे यह प्रयोजनवादी हो या अस्तित्ववादीय चाहे यह यथार्थवादी हो या प्रबंधवादीय इन सभी नजरियों के मूल यह मतैक्यता है कि शिक्षा मानव व्यक्तित्व को नैतिकता, विवेकशीलता, रचनात्मकता एवं पूर्णता से अभिभूत कराती है। शिक्षा से समग्र एवं विवेकशील नागरिकों का समाज सृजित होता है। यदि राजनैतिक–अर्थव्यवस्थावादी दृष्टिकोण से देखें तो शिक्षा एक विषमतामूलक समाज में समता की संभावनाओं को बढ़ावा देती है।

किसी भी समाज में शिक्षा से अपेक्षित सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया उसके लब्ध ध्येयों की तरह सुलभ एवं सहज नहीं होती है। भारतीय समाज में तो यह प्रक्रिया और भी जटिल है। हम जानते हैं कि भारतीय समाज की संरचनाओं में जाति, धर्म, प्रजाति, लैंगिकता जैसी कुछ विशिष्ट विविधताएं हैं, जो शिक्षा एवं समाज (व समाज के व्यक्ति) के बीच मध्यस्थता करती हैं। अर्थात् दलित, आदिवासी, मुस्लिम एवं महिला के लिए शिक्षा की उपलब्धता एवं प्राप्यता उतनी नहीं है, जितनी सवर्ण, हिंदू, पुरुष एवं धनी वर्ग के बच्चों के लिए। गरीब परिवार निःशुल्क शिक्षा की उपलब्धता के बावजूद भी अपने बच्चों को विद्यालय भेजने के पहले लागत–लाभ विश्लेषण करता है। इसके अलावा उन परिवारों के बच्चे जो ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी या नगरीय क्षेत्र में प्रवास करते हैं, उनके बच्चों के साथ शहरी विद्यालयों में सहपाठियों एवं शिक्षकों द्वारा व्यवहार कई बार विद्यार्थियों के मन में शिक्षा के प्रति आकर्षण ही खत्म कर देता है। साथ ही, स्कूल में पढ़ाए जाने वाले पाठ्यक्रम, विषय वस्तु, पढ़ाने की शैली, पठन–पाठन से जुड़ी सामग्रियों की उपलब्धता आदि कुछ ऐसी शैक्षणिक संस्थागतध संरचनात्मक बाधाएं हैं जो शिक्षा से संबंधित ध्येय एवं उससे अपेक्षित परिणाम के बीच की संभावनाओं को धूमिल करती हैं। साथ ही, शिक्षा से अपेक्षित परिणाम शासन एवं सरकार की विचारधारा एवं दूरदृष्टि पर भी निर्भर होता है। शिक्षा व्यवस्था एक राष्ट्रवादी समाज का भी सृजन कर सकती है और एक फासीवादी समाज का भी।

इसीलिए जहां कौटिल्य की शिक्षा का उद्देश्य राजनैतिक एवं आर्थिक था, वहीं प्लेटो का आदर्शात्मक। दूसरी ओर, जहां रवींद्रनाथ टैगोर की शिक्षा का लक्ष्य नैतिक एवं प्राकृतिक था, वहीं गाँधी का नैतिक एवं आध्यात्मिक। दुर्खिम एवं गांधी शिक्षा को सद्गुणी एवं नैतिक नागरिक निर्माण की पूंजी मानते थे, वहीं पीयर बोयूँ (Pierre Bourdieu) इसे सामाजिक पूंजी निर्माण के अभिकरण के रूप में देखते हैं। अंबेडकर के लिए सार्वभौमिक शिक्षा सामाजिक न्याय का साधन है। इस प्रकार हम पाते हैं कि शिक्षा से अपेक्षित ध्येय न सिर्फ कालांतर में बदलते रहे हैं, बल्कि विभिन्न विद्वानों एवं दार्शनिकों के दृष्टिकोण भी अलग–अलग रहे हैं। अर्थात, सर्वशिक्षा सामाजिक परिवर्तन के उत्प्रेरक के रूप में कितनी सफल व असफल रही है, यह ज्यादा इस बात पर निर्भर करता है कि शिक्षा की प्रक्रिया के योग्यात्मक पहलू क्या हैं? शिक्षा एवं समाज के बीच मध्यस्थ संरचनाएं क्या हैं तथा शिक्षा नीति की विचारधारा क्या है?

मूल संविधान के अनुच्छेद 45 के अंतर्गत 26 जनवरी 1950 से 10 वर्ष के अंदर देश के 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की दिशा में राज्य को प्रयास करना था। वर्ष 2002 में अनुच्छेद 45, 21, एवं 51। (ज्ञ) में संविधान के 86वें संशोधन के अंतर्गत परिवर्तन लाए गए। परिणामस्वरूप, 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को अनुच्छेद 21। के अंतर्गत निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान किया गया। साथ ही राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों के अंतर्गत अनुच्छेद 45 को संशोधित कर राज्य को यह जवाबदेही दी गई, कि राज्य 6 वर्ष तक के बच्चों के रख–रखाव एवं शिक्षा संबंधी नीतिगत पहल करेगा। मौलिक कर्त्तव्यों की संवैधानिक सूची में अनुच्छेद 51।(ज्ञ) जोड़ा गया जिसके अनुसार किसी भी माता–पिता या अभिभावक का यह मौलिक कर्त्तव्यों है कि 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए शिक्षा का अवसर प्रदान करे। 86वें संविधान संशोधन (2002) के तहत भारतीय संसद ने 2009 में निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम पारित किया, जिसपर राष्ट्रपति ने अपनी स्वी.ति 26 अगस्त 2009 को दे दी तथा यह अधिनियम 1 अप्रैल 2010 से क्रियान्वित कर दिया गया।[1]

मूल संविधान के अनुच्छेद 45 के अंतर्गत 1950 से 1960 के पहले दशक में ही राज्य को 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य सर्वशिक्षा की दिशा में नीतिगत पहल करनी थी, लेकिन 1951–66 के दौरान पहली तीन पंचवर्षीय योजनाएं नेहरू–महालनोबिस संवृद्धि रणनीति पर आधारित होने के कारण उद्योग, आधारभूत संरचना, तकनीकी एवं प्रतिरक्षा पर ही ठोस नीतिगत पहल कर पाईं। हालांकि इस संवृद्धि रणनीति में उच्च शिक्षा एवं शोध संस्थाओं जैसे आई.आई.टी, आई.आई.एम., आई.टी. आई, इसरो, बार्क आदि की स्थापना की गई, जिससे भारत आज विश्व में कुशल श्रमिकों में दूसरा सबसे बड़ा देश है, लेकिन सार्वभौम, निःशुल्क शिक्षा की दिशा में देश पिछड़ गया।[2]

संवैधानिक प्रावधानों की संकल्पनाओं के अनुरूप भारत सरकार ने सार्वभौमिक निःशुल्क शिक्षा की दिशा में कई कारगर पहल की हैं। राज्य द्वारा प्रायोजित इन नीतिगत पहलों को अनौपचारिक, औपचारिक एवं विशिष्ट शिक्षा दृष्टिकोण एवं प्रयास के संदर्भ में समझा जा सकता है।

अनौपचारिक शिक्षा– बाल शिक्षा, स्वास्थ्य एवं देखभाल के निमित्त 2 अक्टूबर 1975 से भारत सरकार द्वारा देश के विभिन्न जिलों में अखंड बाल विकास सेवाओं की शुरूआत की गई। इस योजना द्वारा 6 वर्ष तक के बच्चों को आँगनवाड़ी केंद्रों पर पोषित आहार दिया जाता है तथा उन्हें अनौपचारिक शिक्षा (क्रीड़ा, मनोरंजन, कहानी, नाटक, चित्रकला, आदि के माध्यम से) प्रदान की जाती है। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि बच्चों का समुचित मनोवैज्ञानिक, शारीरिक एवं सामाजिक विकास हो । वर्ष 2009 तक पूरे देश में आईसीडीएस प्रोजेक्ट की संख्या बढ़कर 7023 तक पहुंच गई तथा पूरे देश में लगभग 13.56 लाख आँगनवाड़ी केंद्र कार्य कर रहे थे।[3] इन आँगनवाड़ी केंद्रों पर सबसे बड़ी समस्या बच्चों के रखरखाव, मनोरंजन के लिए स्थान एवं सामग्री तथा आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को दिया जाने वाला अल्प पारिश्रमिक (1 अप्रैल, 2008 को बढ़ाए गए पारिश्रमिक गैर–मैट्रीकुलेट कार्यकर्त्ताओं के लिए मात्र 1438 रु. मासिक तथा मैट्रीकुलेट शिक्षकों के पांच वर्ष के अनुभव के पश्चात् मात्र 1531 रु. प्रति माह है।) का है।[4]

औपचारिक शिक्षा– औपचारिक शिक्षा के संदर्भ में यदि सर्वशिक्षा का विश्लेषण करें तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NPE, 1986) की संस्तुतियों के अनुरूप देश में एक राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के विकास की दिशा में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा की महत्ता पर बल दिया गया। जिसे भारतीय संविधान में राष्ट्रीय विकास से संबंधित प्रावधानों के अनुरूप अपनी अनुशंसा देनी थी। इस दिशा में 1992 में कार्य मसौदा प्रस्तुत किया गया जिसमें शिक्षा की प्रासंगिकता, लोचशीलता एवं गुणवत्ता पर बल दिया गया। आज सर्वशिक्षा से संबंधित पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पठन विषय वस्तु, शिक्षा उद्देश्य, पठन–पाठन की प्रकृति, पाठ्यपुस्तकों एवं अन्य पाठ्यसामग्रियों के प्रश्न आदि से संबंधित दिशा–निर्देश हमें पाठ्यचर्या रूपरेखा से मिलते हैं।

भारत में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् 1975 से अबतक चार राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (1975, 1988, 2000 एवं 2005) अनुशंसित कर चुकी है। भारत में सर्वशिक्षा का वर्तमान नवाचार राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2005 पर आधारित है। यह रूपरेखा भारत में शिक्षा शास्त्र का एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। यह सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह दृष्टिकोण किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है, जिसके प्रभाववश हम आजतक स्कूल एवं घर के बीच दूरी (अंतराल) बनाए हुए हैं। नई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों में, हर विषय को एक मजबूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। स्कूलों के प्राचार्यों एवं अध्यापकों द्वारा बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की सहायता से और अपने अनुभव पर विचार कर सीखने पर बल दिया गया है। दैनिक समय सारणी, शिक्षण और मूल्यांकन, बच्चों पर बढ़ते बोझ की समस्या, आदि पर अनुशंसाएं की गई। इसमें स्कूल की दैनिक समयसारणी में लचीलेपन का सुझाव दिया तथा मूल्यांकन के मामले में यह अनुशंसित किया गया कि यह प्रक्रिया बच्चों को दबाव–मुक्त करे। इस दिशा में नवीन पाठ्यचर्या की रूपरेखा सोच–विचार, विस्मय, बच्चों को बाल समूहों में संगठित कर मुद्दों पर बहस तथा हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।[5]

(1) प्रारंभिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण– प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण की दिशा में 2001 से पूरे देश में सर्व शिक्षा अभियान की शुरूआत की गई। इस अभियान के शिक्षा–लक्ष्य में गुणात्मक एवं जीवन कौशल से संबंधित शिक्षण तथा बालिकाओं एवं विशिष्ट जरूरत वाले बच्चों एवं क्षेत्रों तक शिक्षा के प्रसार को पहुंचाना है। साथ ही 2010 तक शिक्षा के लक्ष्य की उपलब्धि की समय सीमा निर्धारित की गई। इस दिशा में राज्य सरकारों के साझे प्रयास से सर्व शिक्षा अभियान पूरे देश के लगभग 192 मिलियन बच्चों को सर्वशिक्षा प्रदान करने के लिए क्रियाशील है। इसके अंतर्गत उन क्षेत्रों में नए स्कूल खोले जा रहे हैं, जहां स्कूल नहीं थे, मौजूदा स्कूलों में कक्षाओं से संबंधित कमी को दूर करने के लिए अन्य आधारभूत संरचनाओं का निर्माण किया जा रहा हैय तथा नए सहायक शिक्षकों की नियुक्ति

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

की जा रही है, तॉकि शिक्षक–विद्यार्थी अनुपात संतुलित हो।

प्रारंभिक शिक्षा पोषण सहायता राष्ट्रीय कार्यक्रम जिसे हमें मिड–डे मील स्कीम के नाम से जानते हैं, औपचारिक रूप से इसकी शुरूआत 15 अगस्त 1951 को की गई थी। आज मिड–डे मील कार्यक्रम पूरे विश्व में सबसे बड़ा शिक्षा–पोषण कार्यक्रम है, जो 9.5 लाख स्कूलों में लगभग 12 करोड़ विद्यार्थियों को दिया जाता है। यह कार्यक्रम देश के सभी प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ रहे बच्चों को पोषाहार प्रदान करता है।[6]

(2) विशिष्ट शिक्षा– विशिष्ट शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में अपंग बच्चों एवं बाल श्रमिकों के लिए अलग तरह की अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था की गई है। अपंग बच्चों के लिए नए पाठ्य तरीकों, तकनीकों, स्कूली संरचना में बदलाव (रैम्प, ऑडियो–विजुअल पाठ्यक्रम संबंधी सॉटवेयर विकास), आदि जैसी पहल की जा रही है। बाल श्रमिकों के लिए वी. वी. गिरी राष्ट्रीय श्रम संस्थान, राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजना स्कूल के लिए पाठ्यचर्या प्रारूप तैयार करता है। साथ ही देश के बालश्रमिक प्रभावित जिलों में राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद तथा जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की सहायता से पाठ्यक्रम एवं पाठ्य सामग्री का विकास करता है। जिला प्रशासन में जिलाधीशों की देखरेख में एन. सी. एल. पी. प्रोजेक्ट स्कूल प्रत्येक केंद्र पर 50 बाल श्रमिकों को किराए के मकान में अथवा सरकारी स्कूल में सुबह या शाम को 2–3 घंटों में अनौपचारिक तरीके से पठन–पाठन प्रक्रिया से जोड़े रखते हैं। ऐसे बाल श्रमिक विद्यार्थियों को पोषाहार, निःशुल्क अध्ययन सामग्री तथा उनके नाम से खोले बैंक बचत खातों में 100 रु. प्रतिमाह छात्रवृत्ति भी दी जाती है। इस शिक्षा का मूल लक्ष्य बालश्रम उन्मूलन हैय साथ ही उनमें शिक्षा के प्रति जुड़ाव एवं जीवन कौशल का विकास भी।[7] आज देश के 250 जिलों में चल रहे इन स्कूलों की अपनी सीमाएं हैं। ऐसे स्कूल बालश्रमिक विद्यार्थियों को मुख्य श्रम समय (10 बजे से 4 बजे दिन) के दौरान स्वतंत्र छोड़ देने के कारण, ऐसे विद्यार्थी बालश्रम के दुश्चक्र से मुक्त नहीं हो पाते। श्रम की थकान के कारण ऐसे स्कूल उन बच्चों के लिए महज भोजन एवं छात्रवृत्ति प्राप्त करने के साधन मात्र के रूप में समझे जाते हैं।

सर्वशिक्षा– उत्प्रेरण एवं उपलब्धियां– यदि हम शिक्षा यात्रा का विश्लेषण साक्षरता के दृष्टिकोण से करें,, तो हम पाते हैं कि जहां 1951 जनगणना आंकड़ों के अनुसार भारत में साक्षरता प्रतिशत 18.33 था, वह 2011 तक बढ़कर 74.04 प्रतिशत तक पहुंच गया। इस दौरान महिलाओं की साक्षरता जहां 1951 में 8.86 प्रतिशत थी, वह 2011 तक बढ़कर 65.46 प्रतिशत हो गई। आज सबसे ज्यादा साक्षर महिलाएं केरल में तथा सबसे कम साक्षर महिलाएं बिहार में हैं।[8]

यदि इसका आकलन राज्यवार आंकड़ों के आधार पर किया जाए तो केरल एवं बिहार का साक्षरता क्रम शीर्ष एवं न्यूनतम ही है। हालांकि, पिछले दस वर्षों में (2001–2011) बिहार में साक्षरता प्रतिशत में वृद्धि (16.8 प्रतिशत) रही है। इसके विपरीत इस दौरान राजस्थान, छत्तीसगढ़ एवं आंध्र प्रदेश में साक्षरता प्रतिशत में वृद्धि (6.69 प्रतिशत, 6.34 प्रतिशत एवं 7.23 प्रतिशत, क्रमशः) काफी निराशाजनक रही क्योंकि यह राष्ट्रीय साक्षरता प्रतिशत वृद्धि (9.2 प्रतिशत) से भी कम रही।[9]

अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों से संबंधित आंकड़ों के अध्ययन के और, 2001 के जनगणना आंकड़ों के अनुसार अनुसूचित जातियों (SC) की साक्षरता 54.69 प्रतिशत थी, जिसमें पुरुषों का साक्षरता प्रतिशत 66.64 तथा दलित महिलाओं की साक्षरता 41.9 प्रतिशत थी। ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों की साक्षरता 51.16 प्रतिशत तथा ग्रामीण अनुसूचित जाति महिलाओं की साक्षरता 37.84 प्रतिशत थी।[10]

2001 में अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता 47.10 प्रतिशत थी जिसमें आदिवासी पुरुषों की साक्षरता 59.17 प्रतिशत तथा महिलाओं की 34.76 प्रतिशत थी। ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता 45.02 प्रतिशत तथा ग्रामीण आदिवासी महिलाओं की साक्षरता 34.22 प्रतिशत थी।[11]

यदि 2001 के साक्षरता प्रतिशत का तुलनात्मक अध्ययन करें तो भारत में यह 64.84 प्रतिशत थी, जिसमें पुरुषों की साक्षरता 75.26 प्रतिशत तथा महिलाओं की 53.67 प्रतिशत थी, अर्थात् दलितों का साक्षरता प्रतिशत (54.69 प्रतिशत) राष्ट्रीय आंकड़ों से काफी पीछे था (लगभग 10 प्रतिशत) तथा दलित महिलाओं का साक्षरता प्रतिशत (41.9 प्रतिशत), जो पूरे देश में महिलाओं के साक्षरता प्रतिशत से भी लगभग 12 प्रतिशत पीछे है। कुछ यही हाल आदिवासियों की साक्षरता का है। आदिवासी पुरुष साक्षरता प्रतिशत में लगभग 16 प्रतिशत तथा आदिवासी महिला लगभग 18 प्रतिशत पिछड़े हुए थे।[12]

(प) साक्षरता– विकास का उत्प्रेरक : उपरोक्त आंकड़ों के विश्लेषण स्पष्ट है कि साक्षरता के .ष्टिकोण से आज का भारत 1951 के भारत से काफी बेहतर स्थिति में है। इस दौरान बच्चों के अभिभावकों में भी जनआंदोलनों विज्ञापनों आदि से शिक्षा की महत्ता संबंधी जागरूकता बढ़ी है। यहां तक की घरेलू खर्चों की प्राथमिकताओं में खाने संबंधी व्यय के बाद दूसरे स्थान पर शिक्षा पर किया जा रहा खर्च ही है।[13] साक्षरता एवं राजनीतिक व आर्थिक विकास के संदर्भ में बेजली का तर्क है कि दक्षिण भारतीय साक्षर गांवों में लोकहितों एवं सेवाओं की आपूर्ति संबंधी बहस एवं बैठकें नियमित पाई गईं। इन बैठकों में संसाधन वितरण, स्थानीय लोक सेवकों एवं स्वशासन निकायों की भूमिका एवं जवाबदेही सुनिश्चित किए जाने से संबंधित नियमित फैसले भी लिए गए। इससे शासन एवं स्वशासन के निकायों के उत्तरदायित्वों के सामाजिक अंकेक्षण जैसी प्रगतिशील प्रक्रिया की शुरूआत हुई।[14]

ग्रामीण शिक्षा के व्यापक विस्तार ने एक शिक्षित ग्रामीण युवा वर्ग उत्पन्न किया जो अब सरकारी कर्मचारियोंध्अधिकारियों एवं राजनीतिक दलों में कार्यकर्त्ताओं/नेताओं के समक्ष प्रभावशाली तरीके से जनहित मांगों को रख सकता था। इसी क्रम में गांवों में एक नए नेता वर्ग का उद्भव हुआ जो स्थानीय नौकरशाही व राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों एवं जनमानस की दैनिक जरूरतों के बीच संवाद सेतु के रूप में कार्यरत हैं।[15]

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

प्रस्तुत अध्ययन पटना जिला के अनुसूचित जाति की बालिकाओं के विकास में सर्वशिक्षा अभियान की भूमिका पर आधारित है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए पटना जिला के बख्तियारपुर प्रखण्ड का चयन किया गया है। इस प्रखण्ड में अनुसूचित जाति के लोगों की संख्या पर्याप्त है। सर्वशिक्षा अभियान के कारण अनुसूचित जाति के लोगों में अपनी लड़कियों के प्रति शिक्षा की आकांक्षा उत्पन्न हुई है और अब वे अपने बालिकाओं को पढ़ने के लिए विद्यालय में भेज रहे हैं। जिससे दलित बालिकाओं का विकास हो रहा है।

एस. एन. चौधरी ने उत्तर बिहार के एक गाँव के अध्ययन के आधार पर यह विश्लेषण दिया है कि, सत्ता के पारंपरिक आधार अपनी जमीन खो चुके हैं। स्कूल में हरिजन बच्चों की संख्या बढ़ रही है। यादव और कुर्मी अपने बच्चों को स्कूली शिक्षा पूरी कर उच्च शिक्षा के लिए भेज रहे हैं।[16] इसी प्रकार जेफ्री ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि, 'शिक्षा ने युवा चमार पुरुषों में आत्म सम्मान एवं आत्मविश्वास पैदा किया है।[17] इसी संदर्भ में हम योगेंद्र यादव के उस तर्क को समझ सकते हैं जिसमें वे 1989 के पश्चात् भारतीय प्रजातंत्र में दलितों एवं अन्य पिछड़ी जातियों की बढ़ती भागीदारी को प्रजातांत्रिक लहर के रूप में देखते हैं।[18] वमन एस. देसाई ने अपने शोध निबंध, 'भारत की आर्थिक संवृद्धि में साक्षरता का महत्त्व (2012)' में साक्षरता, जनसंख्या वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय एवं सकल घरेलू उत्पाद के बीच पारस्परिक संबंधों का विश्लेषण किया है। उनके शोध निष्कर्ष के अनुसार, 1951 से 2011 के बीच जिस प्रकार साक्षरता प्रतिशत दर में वृद्धि हुई है उसने व्यक्तियों को न सिर्फ रोजगार के नए अवसरों की जानकारी बढ़ाई है, बल्कि उनके जीवन स्तर में सुधार किया है। वमन देसाई का यह भी निष्कर्ष है कि इस दौरान साक्षर लोगों को अनौपचारिक क्षेत्र में ज्यादा रोजगार मिला है। उनकी यह भी खोज है कि इस काल में देश में कुल जनन दर भी घटा है क्योंकि लोगों में जनसंख्या नियंत्रण एवं परिवार में नए सदस्यों की वृद्धि से संबंधित लागत–लाभ संबंधी जागरूकता बढ़ी है।[19]

सर्वशिक्षा की सामाजिक परिवर्तन के उत्प्रेरक की भूमिका के समक्ष कई चुनौतियां हैं। खासकर, दलित एवं आदिवासी पिछड़े वर्गों की साक्षरता का न्यूनतम प्रतिशत एवं ऐसे बच्चों में शिक्षा के बीच में स्कूल छोड़ देने की दर निराशाजनक स्तर पर बनी हुई है। मानव संसाधन मंत्रालय ने 2005–2006 की अपनी रिपोर्ट में इसके आंकड़ें दिए हैं। इनके अनुसार, अभी भी कक्षा 1 से 10 तक अनुसूचित जातियों की लड़कियों की स्कूली शिक्षा छोड़ देने की दर 73.42 प्रतिशत है, जबकि अनुसूचित जनजाति की लड़कियों में यह दर 77.14 प्रतिशत है, जो काफी ज्यादा है। इसके विपरीत, कक्षा 1 से 4 के बीच स्कूली शिक्षा छोड़ने की दर अनुसूचित जाति की लड़कियों के संदर्भ में 35.36 प्रतिशत (लगभग आधा) है तथा अनुसूचित जनजाति की लड़कियों के मामले में स्कूली शिक्षा छोड़ने की दर 40.03 प्रतिशत (कक्षा 1 से 10 की तुलना में लगभग आधे से थोड़ा कम) है। अर्थात सरकार द्वारा की जा रही प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था प्रभावी है जबकि माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर उतनी प्रभावी नहीं है। इसके पीछे लड़कियों की शिक्षा से संबंधित नकारात्मक सामाजिक मान्यता, शादी, असुरक्षा, जीवकोपार्जन की विवशता आदि जैसे सामाजिक–आर्थिक पक्षों की भूमिका हो सकती है, जिस दिशा में और प्रयास की आवश्यकता है।

असुरक्षा का भाव– स्कूली शिक्षा छोड़ने की दर के पीछे बाल–असुरक्षा एवं शिक्षकों द्वारा जाने वाली सजा से भय भी कारण हो सकता है। आए दिन विभिन्न शिक्षकों द्वारा छात्रों को दी जाने वाली अमानवीय शारीरिक सजा की घटनाओं को मीडिया में उल्लेखित किया जाता है। सरकार ने बाल शिक्षा संबंधी अधिकार अधिनियम में इसका निषेध किया है। शहरी क्षेत्रों में बच्चों के साथ यौन शोषण आदि की घटनाएं भी मीडिया द्वारा प्रकाशित एवं प्रसारित की जाती हैं। इस संबंध में कानूनों का ठोस क्रियान्वयन नहीं हो पाता। इसलिए इस लचर व्यवस्था को ठीक करने की आवश्यकता है ताकि विद्यार्थियों में शिक्षा से संबंधित सुरक्षा एवं आत्मविश्वास एवं सम्मान का भाव बना रहे । शिक्षक एवं विद्यार्थियों के बीच शासक एवं शासित का भाव न रहकर बाल सखा का भाव हो ।

शिक्षकों का शिक्षण एवं प्रशिक्षण– सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गठित आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति जे. एस. वर्मा ने अपने अंवेषण में पाया कि महाराष्ट्र में 300 में केवल 44 संस्थान ऐसे थे, जो शिक्षा के क्षेत्र में डिप्लोमा की पढ़ाई करवाने में सक्षम थे शेष संस्थाएं सिर्फ लाभ अर्जित कर रही थीं तथा डिग्री वितरण कर रही थीं। शिक्षकों को अल्पायु बच्चों को शिक्षा देने के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से परिपक्व एवं बौद्धिक रूप से संवेदनशील बनाना होगा। इस दिशा में दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रारंभिक शिक्षा के लिए स्नातक (B.El.Ed.) की पढ़ाई करवाई जाती है जो, चार वर्ष का पाठ्यक्रम है। इस शिक्षण एवं प्रशिक्षण मॉडल में व्यावहारिक क्रियात्मक गतिविधियों का अनुभव भी दिया जाता है। ऐसे ही शैक्षणिक मॉडल को पूरे देश में लागू किया जाना चाहिए।[20]

विशिष्ट एवं आवासीय विद्यालयों की कमी– नवोदय विद्यालय, केंद्रीय विद्यालय, प्रतिभा विकास विद्यालय जैसे विद्यालयों की संख्या बढ़ाने की जरूरत है। विशिष्ट जरूरत वाले बच्चें यथा अपंग, दलित, आदिवासी, आदि के लिए आवश्यकतानुसार ग्रामीण, पहाड़ी एवं मरुस्थलीय क्षेत्रों में ज्यादा विशिष्ट आवासीय स्कूल खोलने की आवश्यकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं के लिए विशेष विद्यालयों की शुरूआत अपरिहार्य है।

वित्तीय व्यवस्था– पिछले 62 वर्षों में भी सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च नहीं किया गया है। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा किए गए सर्वे से यह पता चलता है कि पिछले दशकों में शिक्षा संबंधी कुल वित्त आवंटन का लगभग 90 प्रतिशत शिक्षकों व कर्मचारियों के वेतन एवं भवन निर्माण पर खर्च हो जाता है। शिक्षा सामग्री, पुस्तकालय, प्रयोगशाला के लिए उपकरण एवं रसायन तथा अन्य पठन–पाठन सामग्रियों पर शिक्षा के क्षेत्र में कुल वित्तीय आवंटन का केवल 10 प्रतिशत खर्च किया जाता है। इस वित्तीय व्यय के अनुपात को सुधारना होगा तथा सरकार को पठन–पाठन सामग्री, उपकरण, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, खेल–कूद के सामान आदि के लिए और ज्यादा वित्तीय व्यवस्था करनी होगी।

शैक्षिक साझेदारी– सर्वशिक्षा के लब्ध लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि सरकारों एवं प्रशासन को गैर–सरकारी

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

संगठनों, दूर–संचार माध्यमों तथा सामाजिक–शैक्षणिक संस्थाओं के साथ साझा प्रयास करना होगा। एकलव्य, ज्ञानदूत, हेडस्टार्ट, एम. वी. फाउंडेशन जैसे गैर–सरकारी संगठनों की भूमिका शिक्षा के क्षेत्र में प्रभावी परिणामों वाली रही है। इसलिए ऐसे शैक्षणिक संगठनों के साथ सरकारी साझेदारी को बढ़ावा देना चाहिए। विशिष्ट जरूरतों वाले बच्चों को विशेष शिक्षा की आवश्यकता के मद्देनजर विद्या ज्योति फाउंडेशन जैसे शैक्षणिक संस्थाओं की विशेषज्ञता का लाभ उठाया जा सकता है तथा ऐसे अन्य विद्यालयों का गठन किया जा सकता है। साथ ही, शिक्षा की महत्ता को प्रचारित व प्रसारित करने तथा सामाजिक परिवर्तन के उत्प्रेरक के रूप में भूमिका को और प्रभावी बनाने के लिए जन संचार माध्यमों के साथ साझे प्रयास को और बढ़ावा देने की आवश्यकता है। सरकार को निगमित क्षेत्र एवं नए सामाजिक आंदोलनों के भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का भी यथोचित प्रयोग करना होगा, तॉकि सामाजिक परिवर्तन के इस उत्प्रेरक से सामाजिक पूंजी में बढ़ोत्तरी हो। पाठ्यक्रमों की विषय–वस्तु को चित्रों, मानचित्रों, संदर्भ चित्रों आदि के माध्यम से ज्यादा सुपाठ्य बनाने की दिशा में भी साझे प्रयास की जरूरत है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Abhay Prasad Singh, Awarded Ph.D. by University of Delhi, on Political Economy of Child Labour in India.
2. Abhay Prasad Singh, Swatnantra Bharat Mein Vikas Ki Ranniti, in Manoj Sinha (ed.) Samkalin Bharat : Ek Parichay, Orient Blackswan, New Delhi, 2012,
3. See, website of VVGNLI.org.in
4. See, Abhay Prasad Singh, ibid.
5. See, ww.ncert.nic.in
6. See, Abhay Prasad Singh, ibid.
7. See, Report on Child Labour, 2011, www. VVGNLI.org.in
8. India : 2012, Government of India, Publication Division, New Delhi.
9. ibid.
10. Source Report of MHRD, Department of Secondary and Highter Education, 2011.
11. ibid.
12. ibid.
13. Anirudh Krishna, Politics and Democratic Participation Reconsidered, Comparative Politics, 38(4), 2006.
14. T. Baseley (et.al.), Participatory Democracy in Action : Survey Evidence from South India, Working Paper, World Bank, 2004.
15. Anirudh Krishna, Local Politics in India, in Nirja Gopal Jaya and Pratap Bhanu Mehta (ed.) Politics in India, OUP, New Delhi, 2012.
16. S.N. Chaudhary, Dynamics of Rural Power Structure, New Delhi, Amar Prakashan, 1987.
17. Craig Jeffrey (et.al.), Degrees Without Freedom : The Impact of Formal Education on Dalit Young Men in North India, Development and Change, 35(5).
18. See, Yogendra Yadav, Electoral Politics in the Time of Change : India's Third Electoral System, 1989-99. EPW (34/35), August 21-Sept. 3, 1999.
19. Vaman S. Desai, 2012. Importance of Literacy in India's Economic Growth, International Journal of Eco nomic Research, V. 312.
20. Krisha Kumar, The Death of Small Boy, The Hindu, 18 December, 2012, New Delhi.

*****